इकाई 22 सांप्रदायिकता का विकास : दूसरे विश्व युद्ध तक

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

आप सभी "सांप्रदायिक" शब्द से परिचित हैं। लेकिन क्या आपने कभी सोचा कि वास्तव में सांप्रदायिकता का क्या अर्थ है और हमारे समाज में इसकी इतनी गहरी जड़ें क्यों हैं? इस इकाई में भारत में सांप्रदायिकता से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- सांप्रदायिकता की व्याख्या कर सकते हैं और सांप्रदायिकता के विभिन्न प्रकारों के बीच फर्क कर सकते हैं;
- समझ सकते हैं कि भारतीय समाज एवं राजनैतिक सोच में सांप्रदायिकता का उदय कैसे हुआ;
- उन विभिन्न शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं जो इसे बढ़ावा देती हैं; और
- 20 वीं शताब्दी में इसके विकास को इंगित कर सकते हैं।

22.1 प्रस्तावना

किसी भी विकासशील देश की प्रमुख प्राथमिकताओं में देश के अंदर जनता में एकता बनाए रखना महत्वपूर्ण है। आधुनिक भारत के इतिहास में इस प्रकार की एकता के लिए भारतीय

जनता, समाज तथा राजनीति के सांप्रदायिकीकरण के कारण बहुत बड़ी चुनौती उठ खड़ी हुई। जहाँ एक ओर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य सभी भारतीयों की एकता थी, वहीं धार्मिक संप्रदाय, धार्मिक हितों और अंततः धार्मिक राष्ट्र की कृत्रिम सीमाएँ तैयार करके लोगों में धार्मिक आधार पर फूट डालने के लिए सांप्रदायिकता प्रयत्नशील रही। इस इकाई में भारत में सांप्रदायिकता के उत्थान तथा विभिन्न शक्तियों के गठजोड़ तथा उनके विकास जिनके कारण सांप्रदायिकता को स्थायित्व मिला, के विषय में जानकारी दी जाएगी। उदाहरण के लिए 19वीं शताब्दी में भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास की अपनी विशिष्टता, औपनिवेशिक शासन एवं कुछ औपनिवेशिक नीतियों का प्रभाव, सांप्रदायिकता विरोधी राष्ट्रीय शक्तियों की कमजोरी और अंततः मुस्लिम लीग एवं हिन्दू महासभा जैसी सांप्रदायिक शक्तियों की सक्रिय भूमिका इत्यादि इस इकाई में रेखांकित किए जायेंगे।

22.2 सांप्रदायिकता : अर्थ एवं अंगभूत

विभिन्न संस्था, संगठन, व्यक्ति एवं दल सांप्रदायिकता को भिन्न-भिन्न रूप में देखते हैं। साथ ही सांप्रदायिकता एक मान्यता, आस्था, सोचने का अपना एक ढंग, विचारधारा तथा मूल्य के रूप में देखी जा सकती है। सांप्रदायिकता एक अस्त्र के रूप में भी देखी जा सकती है। इसका इस्तेमाल विभिन्न रूपों में हो सकता है और विभिन्न वैचारिक स्तरों के आधार बिंदओं से इसका अध्ययन हो सकता है। अतः सांप्रदायिकता को मूल रूप में जानना अति आवश्यक है।

22.2.1 सांप्रदायिकता का अर्थ

ऐसा माना जाता है कि सामान्यतया सांप्रदायिकता एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार समान धर्म वाले लोगों के बीच समान सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक हित और अस्मिताएँ हों — दूसरे शब्दों में सांप्रदायिकता ऐसी मान्यता है जिसके अनुसार धर्म समाज का आधार तथा समाज के विभाजन की आधारभूत इकाई तैयार करता है। इसके अनुसा धर्म ही सभी अन्य मानवीय हितों का प्रतिपादन करता है। सांप्रदायिकता को बेहतर रूप में समझने के लिए आइए इसे एक अन्य दृष्टिकोण से देखा जाए। मनुष्य एक बहुरूपी सामाजिक प्राणी है जो एक साथ कई पहचान रखता है। उसकी पहचान उसके देश, क्षेत्र, लिंग, व्यवसाय, परिवार के अंतर्गत उसके अपने स्तर, धर्म, जाति आदि के आधारों पर हो सकती है। संप्रदायवादी इन तमाम आधारों में से केवल धार्मिक पहचान को ही चुनता है और इसे आवश्यकता से कहीं अधिक महत्व देने का प्रयास करता है, परिणामतः सामाजिक संबंध, राजनैतिक समझ तथा आर्थिक संघर्ष धार्मिक पहचान के आधार पर व्याख्यायित किए जाते हैं। संक्षेप में तमाम महत्वपूर्ण पहलुओं को नजरअंदाज करके धर्म को अनावश्यक रूप से अत्यधिक महत्व देना संप्रदायवाद का आरंभ है। यहाँ दो अन्य मुद्दों पर स्पष्टता आवश्यक प्रतीत होती है।

प्रथमतः, स्वतंत्रतापूर्व भारतीय परिवेश में सांप्रदायिकता की अभिव्यक्ति मुख्य रूप से हिन्दू और मुस्लिम संप्रदायों के कुछ वर्गों के बीच टकराव के रूप में हुई। इसी कारण से उस समय की राजनैतिक समझ एवं उसकी अभिव्यक्ति में सांप्रदायिकता को हिन्दू-मुस्लिम समस्या अथवा हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न के रूप में देखा गया। फिर भी इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उक्त समस्या केवल हिन्दू-मुस्लिम समस्या थी अथवा यह किसी भी रूप में धार्मिक समस्या थी।

इसके अलावा सांप्रदायिक विचारधारा तथा उसका प्रचार हमेशा समान स्तरीय नहीं रहा। दरअसल स्वतंत्रता संग्राम के तेज होने और समाज के राजनैतिकरण में तीव्रता आने के साथ ही सांप्रदायिकता ने भी अपनी गति तेज की और इसके प्रचार का स्तर और भी तेज हो गया। संक्षिप्त रूप में सांप्रदायिक प्रचार एवं तर्क निम्नलिखित तीन स्तरों पर थे :

1) किसी धार्मिक संप्रदाय के सभी सदस्यों के हित समान होते हैं। उदाहरण के लिए यह तर्क कि मुसलमान जमींदार एवं किसान के हित एक हैं क्योंकि दोनों एक ही संप्रदाय के सदस्य हैं (यही तर्क सिख अथवा हिन्दू संप्रदाय पर भी लागू होता है)।

2) किसी धार्मिक संप्रदाय के सदस्यों के हित दूसरे संप्रदाय के सदस्यों से भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि सभी हिन्दुओं के हित मुस्लिमों के हितों तथा इसी प्रकार मुस्लिमों के हित हिन्दुओं के हितों से भिन्न थे।

3) न केवल इन हितों में भिन्नता थी बल्कि ये हित आपस में टकरावपूर्ण एवं विपरीत भी थे। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्तर्विरोधी हितों के कारण हिन्दुओं एवं मुसलमानों का सह अस्तित्व संभव नहीं था।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह तर्क गलत थे, सामाजिक राजनैतिक हितों की गलत समझ पर आधारित थे और वास्तविकता से कहीं दूर थे पूरे मध्यकालीन भारतीय परिवेश में हिन्दुओं और मुसलमानों का एक काफी बड़ा भाग सांप्रदायिक सद्भाव के माहौल से सह अस्तित्वमान था। यद्यपि धार्मिक भिन्नता मौजूद थी फिर भी हिन्दू मुसलमान दोनों संप्रदायों के आम लोग निरंतर शांति के माहौल में रह रहे थे। और पारस्परिक सद्भाव बनाए रखते थे।

22.2.2 अंगभूत

सांप्रदायिक विचारधारा, सांप्रदायिक तनाव, सांप्रदायिक हिंसा, सांप्रदायिक राजनीति, सांप्रदायिक भावना जैसे शब्द अक्सर एक दूसरे के पूरक के रूप में इस्तेमाल किए जाते हैं। यह आवश्यक है कि इन शब्दों में फर्क किया जाय और सांप्रदायिकता के विभिन्न अंगभूतों को स्पष्ट किया जाय। सर्वप्रथम 1939 में के. बी. कृष्णा ने सांप्रदायिक तनाव एवं सांप्रदायिक राजनीति में भेद किया। सांप्रदायिक तनाव एक अस्थायी समस्या है जो अचानक घटित होती है और इसकी अभिव्यक्ति हिंसा में होती है तथा जन साधारण के निम्न वर्ग इसमें मुख्य रूप से शामिल होते हैं जबकि सांप्रदायिक राजनीति एक स्थायी समस्या है, जिसमें मुख्य रूप से मध्यम वर्ग जमींदार तथा नौकरशाही तत्व शामिल होते हैं । इनमें एक चीज सामान्य होती है और वह यह कि यह दोनों ही अपना आधार सांप्रदायिक विचारधारा से प्राप्त करते हैं।

सांप्रदायिकता को एक ''हथियार'' एवं एक ''मूल्य'' के रूप में भी देखा जा सकता है। यह उन लोगों के लिए हथियार है जो इससे लाभ उठाना चाहते हैं, जिनका इसके बने रहने में हित है अथवा जो इसका इस्तेमाल अपने राजनैतिक लाभों के लिए करते हैं।

सांप्रदायिकता उन लोगों के लिए ''मूल्य'' का स्तर रखती है जो इसे स्वीकारते हैं, इसमें आस्था रखते हैं, सांप्रदायिक विचारों को आत्मसात् कर चुके हैं और उन्हें अपनी जीवन शैली में शामिल कर चुके हैं। ऐसे लोग जो कि अत्यंत धार्मिक प्रकृति के होते हैं, सामान्यत: सांप्रदायिक विचारधारा तथा प्रचार का शिकार होते हैं न कि उससे लाभान्वित। वे सदैव सांप्रदायवादियों द्वारा जो इस विचारधारा में अपना स्वार्थ रखते हैं, शोषित किए जाते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि सांप्रदायिकता के अनेक अंगभूत अथवा तत्व हैं। सांप्रदायिकता को उसके पूरे तत्वों (सांप्रदायिक तनाव, सांप्रदायिक राजनीति, हथियार, मूल्य आदि) के साथ एक संरचना के रूप में देखा जाना चाहिए। ये तत्व इस संरचना में शामिल हैं और सांप्रदायिक विचारधारा के सूत्रों से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं जिससे कि इस संरचना को बल मिलता है।

22.2.3 सांप्रदायिकता के प्रति मिथकें

सांप्रदायिकता को अधिकतर गलत रूप में समझा जाता रहा है और परिणामस्वरूप इसके प्रति अनेक मिथकें बन चुकी हैं। इस दृष्टि से यह अति आवश्यक हो जाता है कि यह जाना जाय कि सांप्रदायिकता क्या नहीं है। सांप्रदायिकता को समझने की प्रक्रिया में इससे जुड़ी मिथकों को ध्यान में रखना ज़रूरी है।

1) प्रचलित दृष्टिकोण के विपरीत, सांप्रदायिकता केवल धर्म का राजनीति में प्रवेश मात्र अथवा केवल राजनीति की धार्मिक रूप में व्याख्या मात्र नहीं है। दूसरे शब्दों में धर्म के राजनीति में प्रवेश से आवश्यक रूप में सांप्रदायिकता का उदय नहीं हुआ। उदाहरण के लिए बीसवीं शताब्दी के दो महानतम धर्मनिरपेक्ष नेता महात्मा गांधी और मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद काफी धार्मिक थे और अपनी राजनीति को धार्मिक रूप में व्याख्यायित करते थे।

2) सांप्रदायिकता धार्मिक मतभेदों का परिणाम नहीं हैं। दूसरे शब्दों में धार्मिक मतभेद अपने आप में सांप्रदायिकता का सूत्रपात नहीं करते। उदाहरण के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच धार्मिक मतभेद शताब्दियों से चले आ रहे थे किन्तु केवल आधुनिक काल में पहुँच कर ही इन मतभेदों ने सांप्रदायिकता का रूप लिया। दरअसल सांप्रदायिकता धार्मिक समस्या है ही नहीं।

3) सांप्रदायिकता भारतीय समाज में अंतर्निहित नहीं थी, जैसा कि माना जाता रहा है। यह भारत के भूतकाल की निरंतरता नहीं बल्कि कुछ विशेष परिस्थितियों एवं विभिन्न शक्तियों के गठजोड़ का परिणाम थी। सांप्रदायिकता आधुनिक भारत में ही उपजी यह उतनी ही आधुनिक है जितना कि औपनिवेशिक शासन। सांप्रदायिकता की व्याख्या आधुनिक भारत में हुए राजनैतिक एवं आर्थिक विकासों के संदर्भ में की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न 1

1 आप सांप्रदायिकता से क्या समझते हैं? दस पंक्तियों में लिखें

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2 निर्म्नलिखित पर दो-दो पंक्तियाँ लिखें।

सांप्रदायिक तनाव

....

....

सांप्रदायिक राजनीति

....

....

सांप्रदायिकता मूल्य के रूप में

....

....

3 निम्न में से कौन से वक्तव्य सही (√) अथवा गलत (×) हैं।

i) सांप्रदायिकता केवल धार्मिक मतभेदों का ही परिणाम नहीं हैं।

ii) सांप्रदायिकता भारतीय समाज में अंतर्निहित थी।

iii) सांप्रदायिकता एक आधुनिक समस्या है।

iv) सांप्रदायिक तर्क गलत समझ पर आधारित थे तथा भारतीय वास्तविकता से परे थे।

22.3 उत्पत्ति एवं विकास

सांप्रदायिकता की जड़ें तलाश करने के उद्देश्य से हमें इतिहास में कितना पीछे जाना चाहिए? यह एक विवादपूर्ण प्रश्न रहा है। कुछ विद्वानों ने इस समस्या की जड़ें मध्यकालीन भारत में ढूंढने का प्रयास किया है। उनके अनुसार सांप्रदायिकता की जड़े हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा अपने मतभेद समाप्त न कर पाने तथा एक समाज की स्थापना न करने में ढूँढी जा सकती है। उनका मानना है कि भारत में धार्मिक मतभेद हमेशा से रहे हैं और हिन्दू समाज और मुस्लिम समाज के रूप में दो समाज सदैव अस्तित्वमान रहे हैं, भारतीय समाज जैसी कोई चीज नहीं रही। इस विचार का प्रभावपूर्ण खंडन उन विद्वानों द्वारा किया गया है जिनका मानना है कि भारतीय समाज में विघटनकारी शक्तियों की भूमिका को अतिशयोक्ति के रूप में नहीं पेश किया जाना चाहिए। भारतीय समाज में ऐसी शक्तियाँ मौजूद रही हैं जिन्होंने विभिन्न जातियों, संप्रदायों, उपसंप्रदायों आदि के लोगों को एकीकृत किया है।

फिर इस समस्या का आरंभ कहाँ से हुआ? सांप्रदायिकता की उत्पत्ति अंग्रेजी साम्राज्य के भारत में प्रवेश करने के साथ देखी जानी चाहिए जिसका प्रभाव भारतीय समाज और अर्थ-व्यवस्था पर अद्भुत रूप से पड़ा।

22.3.1 सामाजिक एवं आर्थिक कारण

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के उदय ने शक्ति संरचना में भारी परिवर्तन किए जिसका प्रभाव भारतीय समाज के सभी वर्गों पर पड़ा। साम्राज्यवाद के उदय के साथ ही उच्चवर्गीय मुसलमानों का पतन शुरू हुआ। बंगाल में, जहाँ कि उच्चवर्गीय मुसलमानों का सेना के उच्च पदों, प्रशासन एवं न्यायालयों में रोजगार पर अर्ध आधिपत्य था, इसका सबसे अधिक प्रभाव देखने में आया, धीरे-धीरे भूमि पर भी उनका आधिपत्य कम होने लगा। विशेष रूप से 1793 के स्थाई बन्दोबस्त तथा 1833 में अंग्रेजी के राज-भाषा बनने के साथ उच्च वर्गीय मुसलमानों की सम्पति, शक्ति तथा प्रभाव में कमी आ गयी। ऐसा होने के साथ ही भारतीय समाज की अपनी अलग विशेषता के कारण मुस्लिमों का नुकसान सामान्यत: हिन्दुओं के पक्ष में गया जिन्होंने शिक्षा एवं अन्य आधुनिकीकृत शक्तियों पर मुसलमानों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक प्रतिक्रिया दिखायी। मुसलमान इस दौड़ में काफी पिछड़ गए दूसरे शब्दों में "अंग्रेजी साम्राज्यवादी शासन कें अंतर्गत हुए आर्थिक विकासों ने जिन लोगों को लाभ पहुँचाया उनमें मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की संख्या कहीं अधिक थी" (डब्लू. सी. स्मिथ माडर्न इस्लाम इन इंडिया-1946) हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों ने शिक्षा, संस्कृति, नए व्यवसाय तथा प्रशासन में पद जैसी सरकारी सुविधाओं को बाद में अपनाया। परिणामत: हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में पुरानी परंपराओं, रवैयों और मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन के लिए बौद्धिक जागरण भी बाद में हुआ। इस बिन्दू पर राम मोहन राय तथा सैयद अहमद खान के बीच अंतराल का उदाहरण कथन में स्पष्टता ला सकता है। इस अंतराल के कारण मुसलमानों के बीच कमजोरी तथा असुरक्षा की भावना ने परंपरागत विचार प्रक्रिया तथा धर्म पर उन्हें आश्रित बना दिया।

समकालीन इतिहासकार इस तर्क से पूरी तरह सहमत नही हैं कि मुसलमान हिन्दुओं से पिछड़ गए क्योंकि 19वीं शताब्दी के आधुनिकीकरण और सामाजिक आर्थिक विकास का अनुसरण उन्होंने देर से किया। अत: इसे इसी परिप्रेक्ष्य एवं संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इसका एक मुख्य कारण भिन्न क्षेत्रों में इसकी भिन्न व्यावहारिकता है। यदि एक समूह के रूप में मुसलमानों ने बंगाल में अंग्रेजी शासन के कारण नुकसान उठाया तो उत्तर प्रदेश जैसे क्षेत्रों में लाभ भी उठाया। फिर भी अंतराल की संकल्पना का काफी महत्व है क्योंकि इससे हमें बीसवीं शताब्दी में मुसलमानों के राष्ट्रीय मुख्य धारा से कट जाने की पृष्ठभूमि का पता चल पाता है। 1939 में जवाहरलाल नेहरू द्वारा अपने एक मित्र को लिखे गए पत्र में अंतराल की संकल्पना तथा सांप्रदायिकता के आपसी संबंध का उत्कृष्ठ विवरण मिलता है : "1857 के भारतीय गदर के बाद दमन के कुचक्र का दौर चला जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रभावित हुए किंतु शायद मुसलमान अधिक प्रभावित हुए। धीरे-धीरे लोगों ने स्वयं को इस दमन से उभारा। हिन्दुओं ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनी शुरू की, जिससे कि उन्हें सरकारी

सेवाओं में आने का मुसलमानों की अपेक्षा अधिक मौका मिल सका। हिन्दुओं ने व्यवसायों और उद्योगों में भी भारी संख्या में प्रवेश करना शुरू किया। मुसलमानों को प्रतिक्रियावादी तत्वों ने आधुनिक शिक्षा और उद्योग में उन्हें प्रवेश नहीं करने दिया। इस दौर में हिन्दुओं के बीच एक नए मध्य वर्ग का उदय आरंभ हुआ जबकि मुसलमान अधिकतर सामंती जाल में फँसे रहे। हिन्दू मध्य वर्ग ने राष्ट्रीय आंदोलन की नींव रखी। लगभग एक पीढ़ी के बाद मुसलमानों ने भी वही रुख अपनाया और अंग्रेजी शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं एवं व्यवसायों की ओर बढ़े और एक नए वर्ग का उदय हुआ। विभिन्न मध्यवर्गीय तत्वों के बीच सरकारी सेवाओं को लेकर टकराव पनपने लगा और यही दौर में सांप्रदायिकता की शुरुआत थी।''

इस प्रकार भारत में सांप्रदायकिता शैक्षिक, राजनैतिक एवं आर्थिक रूप में असमान विभिन्न संप्रदायों के बीच रोजगार के लिए संघर्ष थी। इतिहासकार के. बी. कृष्णा (प्राब्लम्स ऑफ माइनौरिटीज-1939) उन पहले विद्वानों में से एक है जिन्होंने सांप्रदायिकता की समस्या पर कलम उठायी। उनका मानना है कि यह संघर्ष सामंतवादी माहौल में अंग्रेजी साम्राज्यवाद द्वारा उनकी प्रति संतुलन की नीति द्वारा भारतीय पूँजीवाद के विकास के दौर में पैदा हुए। अतः यह साम्राज्यवादी-पूँजीवादी-सामंतवादी ढाँचे की उत्पत्ति थी।

के. बी. कृष्णा के अनुसार ''सांप्रदायिकता का इतिहास भारत में ब्रिटिश नीति का इतिहास है साथ ही यह भारत में मध्यवर्गीय चेतना के विकास तथा अनेकता और राजनैतिक शक्ति के लिए मध्यवर्ग की बढ़ती हुई माँग का इतिहास है किंतु अंग्रेजी साम्राज्यवाद इसका केवल एक पक्ष है और देश की सामाजिक अर्थव्यवस्था इसका दूसरा पक्ष है।''

इस बिन्दु पर पहुँच कर सांप्रदायिकता के विकास में अंग्रेजी साम्राज्यवाद एवं राजनीति की भूमिका पर दृष्टि डालना उपयुक्त होगा।

22.3.2 अंग्रेजी नीति की भूमिका

सांप्रदायिकता के विकास के लिए अंग्रेजी नीति मुख्य रूप से जिम्मेदार है। यदि सांप्रदायिकता भारत में पनपी और इसने भयावह रूप धारण कर लिया जैसा कि 1947 के उदाहरण से स्पष्ट है, तो इसके लिए बहुत कुछ अंग्रेजी सरकार जिम्मेदार है जिसने कि सांप्रदायिकता को काफी बढ़ावा दिया। लेकिन इससे पूर्व कि हम अंग्रेजी नीति पर चर्चा करें, कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होते हैं। अंग्रेजों ने सांप्रदायिकता को जन्म नहीं दिया। जैसा कि हमने देखा, कुछ सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक मतभेद पहले से ही मौजूद थे। अंग्रेजों ने इनका निर्माण नहीं किया बल्कि सिर्फ इन परिस्थितियों का लाभ उठाया था जिससे उनका राजनैतिक उद्देश्य पूरा हो सके। डब्लू. बी. स्मिथ (माडर्न इस्लाम इन इन्डिया-1946) ने इस बिन्दू को बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से उजागर किया है। ''सरकार की राजनैतिक नीति को उतनी सफलता नहीं मिलती, यदि इस नीति को बढ़ावा देने के लिए प्रभावशाली आर्थिक कारण पहले से मौजूद न होते। न तो सांप्रदायिकता इतनी प्रभावपूर्ण विघटनकारी शक्ति बन पाती और न ही उच्च वर्गीय मुसलमान इतने प्रभावपूर्ण ढंग से दमित किए जा सकते, यदि संबंधित वर्ग के हिन्दू और मुस्लिम लोग समान आर्थिक स्तर के होते। लेकिन ऐसा नहीं था। इसलिए यह स्पष्ट है कि ''फूट डालो और राज करो'' की अंग्रेजी नीति जिस पर हम चर्चा करने जा रहे हैं केवल इसलिए सफल हो सकी क्योंकि समाज की आंतरिक आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उस सफलता में भूमिका निभा रही थीं। यह समझना महत्वपूर्ण है कि सांप्रदायिकता के विकास एवं उसके इस्तेमाल तथा ''फूट डालो और राज करो'' की नीति के लिए परिस्थितियाँ अत्यंत अनुकूल थी। सांप्रदायिकता के उदय एवं विस्तार के पीछे मात्र यह ही कारण नहीं था कि यह ब्रिटिश शासन की राजनैतिक जरूरतें पूरा कर सकने में सक्षम थी बल्कि एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि भारतीय समाज के कुछ हिस्सों की सामाजिक जरूरतें भी इससे पूरी हो रही थी। सांप्रदायिकता का जन्म केवल अंग्रेजी सरकार ने नहीं किया। यह विभिन्न कारणों का संयुक्त परिणाम थी।

सांप्रदायिकता से संबंधित ब्रिटिश नीति का इतिहास आसानी से 1857 के विद्रोह के तुरन्त बाद के दौर से रेखांकित किया जा सकता है। 1857 के बाद शासकों के लिए यह आवश्यक हो गया कि ब्रिटिश साम्राज्य को भारत में बनाए रखने के लिए नई नीतियों का प्रतिपादन किया जाए। इस प्रकार 1857 के बाद सरकारी नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए और

अंग्रेजी नीतियों का दोहरा चरित्र सामने आया। इसमें अब उदारवादी एवं साम्राज्यवादी नीतियों का समावेश हुआ। वे केवल इस हद तक उदारवादी थी कि जो वर्ग पनप रहे थे उनकी माँगों और इच्छाओं को मान्यता मिली तथा उनकी पूर्ति की गई ये साम्राज्यवादी इसलिए थी क्योंकि केवल उन माँगों की पूर्ति की गयी जिनमें साम्राज्यवादी हित प्रमुख थे। इन्हें इसलिए भी साम्राज्यवादी कहा जा सकता है क्योंकि इन विभिन्न वर्गों एवं हितों के टकराव का लाभ भी अंग्रोजों द्वारा उठाया गया। यह निति दोहरे उद्देश्य से तैयार की गयी थी। यह दोहरे उद्देश्य थे एक ओर नए उभरते हुए वर्गों को समर्थन देकर उन्हें मित्र बनाना और उसके बाद उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध ला खड़ा करना। एक वर्ग के वर्गीय हितों को दूसरे वर्ग के वर्गीय हितों से टकराना, एक वर्ग को दूसरे वर्ग के विरुद्ध ला खड़ा करना। संपेक्ष में यही ब्रिटिश नीति की भूमिका रही जो कि रियायत, प्रति संतुलन एवं बलप्रयोग की नीति थी।

एक बार इस नीति के व्यवहार में आ जाने के बाद इसका परिणाम सांप्रदायिकता के रूप में सामने आया। लेकिन इस नीति के पालन करते हुए भी सांप्रदायिक विचारधारा सरकार के राजनैतिक उद्देश्यों को पूरा करने में लाभप्रद सहयोगी रही। इस बिंदु पर पहुँच कर सरकार के समक्ष मुख्य रूप से दो उद्देश्य थे।

1 समाज में समर्थक बनाना, नियंत्रण एवं प्रभाव बढ़ाने के उद्देश्य से कुछ वर्गों को सरंक्षण देना और इस प्रकार समाज में अपने आधार को मजबूत करना।

2 भारतीयों में एकता न होने देना। यदि समाज के सभी वर्ग एक विचार धारा के अंतर्गत हो जाते तो अंग्रेजी साम्राज्य के लिए खतरा पैदा कर सकते थे। इसलिए सांप्रदायिक विचार धारा का इस्तेमाल करके उसे बढ़ावा देते हुए भारतीयों में एकता नहीं होने दी गयी। बीसवीं शताब्दी में यह कार्य और प्रभावपूर्ण ढंग से किया गया और राष्ट्रीय विचारधारा, सगठन और माँगों के न्यायगत होने तथा उनकी प्रमाणिकता को नकारने के उद्देश्य से सांप्रदायिक माँगों और संगठनों को प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार एक ओर मुसलमानों को कांग्रेस से दूर करने का भरसक प्रयास किया गया और दूसरी ओर कांग्रेस के दावों को यह कह कर ठुकराया जाता रहा कि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही है। सांप्रदायिकता ने सरकार को एक और लाभ पहुँचाया। सांप्रदायिक तनाव बने रहने तथा इसके और बदतर होने को अंग्रेजी शासन ने अपनी सरकार बनाए रखने के एक बहाने के रूप में इस्तेमाल किया। उनके तर्क कुछ इस प्रकार थे—मुख्य राजनैतिक दल जैसे कांग्रेस, मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा आपस में कोई समझौता नहीं कर सके। भारतीय जनता आपस में विभाजित है अत: यदि ब्रिटिश शासन समाप्त भी हो जाए तो भी वे सरकार बनाने की स्थिति में नहीं है। इस प्रकार अंग्रेजी शासन के भारतीय विकल्प की असंभावना पर निरंतर जोर दिया गया। पहले सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन देना और बाद में इसी को अपने राजनैतिक लाभों के लिए इस्तेमाल करना अंग्रेजी नीति का हिस्सा था। आगे जब बीसवीं शताब्दी में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों पर चर्चा होगी तो इस पर और विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

22.3.3 उन्नीसवीं शताब्दी में पुनरुत्थानवाद

उन्नीसवीं शताब्दी में पुनरुत्थान के रवैये ने सांप्रदायिकता के विकास में काफी योगदान दिया। विश्व भर में साम्राज्यवाद के अंतर्गत पुनरुत्थानवाद के रवैये सामान्य रूप से देखे जा सकते हैं। पुनरुत्थान उस स्वाभिमान की पुनर्प्राप्ति का प्रयास था जिसे राजनैतिक वशीकरण के कारण ठेस पहुँची थी। यह स्वाभिमान भारत के प्राचीन युग को गौरवान्वित करके प्राप्त करने का प्रयास किया गया। यह भारत के वर्तमान अपमान के संदर्भ में क्षतिपूर्ति के रूप में किया जा रहा था। यद्यपि पुनरुत्थान ने अतीत के गौरव को स्थापित किया लेकिन साथ ही कछ अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न कर दी। इसकी एक समस्या हिन्दुओं और मुसलमानों के भिन्न गौरवपूर्ण उद्गम का प्रस्तुतीकरण थी। इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण ने पूर्व अस्तित्वमान धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक मतभेदों को एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य दे दिया। हिन्दुओं के सुधारवादियों ने भारत के प्राचीन युग को गौरवान्वित करते हुए मध्ययुगीन भारत को बर्बरता का युग बताते हुए उसकी भर्त्सना की। इसी प्रकार मुसलमानों ने अपने गौरव और महानता की तलाश में अरब में इतिहास की शरण ली। इस प्रकार ऐसे समय में जबकि

22. सैयद अहमद खान

हिन्दू और मुसलमान हर रूप में एकबद्ध होने चाहिए थे ऐतिहासिक रूप से भिन्न-भिन्न इकाई के रूप में उभर कर सामने लाये गये। यह क्षति बीसवीं शताब्दी में और भी स्पष्ट रूप में सामने आयी जब मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने द्विराष्ट्रीय नजरिए (टू नेशन थियोरी) के आधार पर यह कहा कि "भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्र के रूप में दो राष्ट्र है" इसका एक कारण उन्होंने यह भी बताया कि दोनों का इतिहास अलग-अलग है और अक्सर एक राष्ट्रीयता का नायक दूसरे राष्ट्रीयता के लिए खलनायक सिद्ध होता रहा है।

22.3.4 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के राजनैतिक रवैये

पुनरुत्थान के प्रश्न से जुड़ा हुआ प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में मुसलमानों के कुछ वर्गों में इस प्रकार के राजनैतिक रवैयों का विकास था। यद्यपि यह रवैये सांप्रदायिकता से परे थे लेकिन इन रवैयों ने बाद में विकसित हुई सांप्रदायिक राजनीति के लिए पृष्ठभूमि तथा कुछ औचित्य अवश्य प्रदान कर दिया। इस संदर्भ में सैयद अहमद खान का उदाहरण लिया जा सकता है।

सैयद अहमद खान की राजनैतिक समझ और गतिविधियाँ हमेशा एक दोहरेपन से प्रभावित रही। उन्होंने अपनी गतिविधियों का आरंभ बिना किसी सांप्रदायिक भेदभाव के किया। उनका मुख्य उद्देश्य मुसलमानों में सुधार लाने की प्रक्रिया आरंभ करना, उन्हें आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता की ओर प्रेरित करना और उन्हें सरकारी संरक्षण दिलाना था। इसके लिए उन्होंने अलीगढ़ कालेज की स्थापना की जिसे बहुत से हिन्दुओं द्वारा आर्थिक सहायता मिली। उस कालेज में बहुत से हिन्दू छात्र और अध्यापक भी आये। स्वयं उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना के समर्थन में आवाज उठायी।

लेकिन 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद उनकी राजनैतिक समझ में काफी परिवर्तन आया। मुसलमानों के लिए प्रशासनिक पद हासिल करने तथा अंग्रेजी शासन के प्रति समर्थन दर्शाने की उनकी प्राथमिकता कांग्रेस की साम्राज्यवाद विरोधी नीति के एकदम प्रतिकूल थी। यद्यपि उनका कांग्रेस के साथ बुनियादी मतभेद अंग्रेजी शासन के प्रति उसके रुख से था लेकिन उन्होंने साथ ही कांग्रेस को हिन्दू दल के रूप में आरोपित करते हुए मुसलमान विरोधी दल बताकर उसका विरोध किया। इस प्रकार उन्होंने सांप्रदायिकता के कुछ मूलभूत तर्कों की नींव रख दी। इन तर्कों में से एक तर्क यह था कि हिन्दू बहुसंख्यक हैं और यदि अंग्रेजों ने अपना शासन समाप्त करके शासन की बागडोर भारतीयों के हाथ में दे दी तो मुसलमानों के हितों को बहुसंख्यकों से नुकसान पहुँचेगा। यही वह आधार था जिसके कारण सैयद अहमद खान ने प्रतिनिधि जनतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना का विरोध किया। उनके अनुसार जनतंत्र का अर्थ होगा बहुसंख्यकों के हाथ में शक्ति एकत्रित होना क्योंकि "यह पासे के उस खेल जैसा होगा जिसमें एक आदमी के पास चार पासे हों और दूसरे के पास एक"। उनका यह भी विचार था कि चुनाव प्रणाली सारी शक्ति हिन्दुओं के पास पहुँचा देगी। इस प्रकार सैयद अहमद खान एवं उनके सहयोगियों की विचारधारा के परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता के तीन निम्नलिखित तत्व स्पष्ट रूप से सामने आते हैं।

- राष्ट्रवादी शक्तियों का विरोध
- जनतांत्रिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं का विरोध
- अंग्रेजी शासन की स्वामिभक्ति

कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह तर्क पूर्ण रूप से गलत थे। यद्यपि कांग्रेस के अंदर काफी हिन्दू थे लेकिन उसे किसी भी रूप में हिन्दू संगठन नहीं कहा जा सकता था। इसकी माँगों और कार्यक्रमों में हिन्दुत्व जैसा कुछ भी नहीं था। कांग्रेस के 1887 के अधिवेशन की अध्यक्षता एक मुसलमान बदरूद्दीन तैय्यबजी ने की और बाद के वर्षों में मुसलमान प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ती गयी। इसके अलावा एक आधुनिक प्रतिनिधि संस्थान के रूप में जनतंत्र ने मुसलमानों के लिए किसी प्रकार का खतरा नहीं पैदा किया। दरअसल इसने केवल मुसलमान (और साथ ही हिन्दू) राजाओं, सामंतों एवं जागीरदारों के लिए खतरा पैदा किया जिनके सैयद अहमद खान एक प्रतिनिधि थे।

22.3.5 सांप्रदायिक संगठनों की भूमिका

सांप्रदायिकता के एक बार उभरने के बाद उसे सरकार का प्रोत्साहन मिल गया और फिर यह स्वयं ही पनपने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक ऐसी व्यवस्था थी जो बिना किसी सहारे के स्वयं मजबूत बन सकती थी। इस प्रक्रिया में सांप्रदायिक संगठनों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मुख्य सांप्रदायिक संगठन मुस्लिम लीग 1906 में गठित और हिन्दू महासभा (1915 में गठित) एक दूसरे के विरोधी थे, लेकिन वे हमेशा एक दूसरे को औचित्य प्रदान करते हुए एक दूसरे को और भी सांप्रदायिक बनाते रहे। अपने प्रचार एवं राजनैतिक गतिविधियों द्वारा उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के नजदीक नही आने दिया। एक दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना फैलायी और इस प्रकार जनसाधारण में सांप्रदायिकता का प्रसार किया।

23. हिन्दू महासभा के संस्थापक मदन मोहन मालवीय

22.3.6 राष्ट्रीय आंदोलन की कमजोरियाँ

बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिकता के विकास को राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा ही रोका जा सकता था। सांप्रदायिक विचारधारा राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्तियों के द्वारा ही परास्त की जा सकती थी। लेकिन एक राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जनसाधारण में सांप्रदायिकता फैलने से न रोक सकी। कांग्रेस राष्ट्रवाद एवं धर्मनिरपेक्षता के प्रति कटिबद्ध थी और भारतीयों में एकता लाने की इच्छुक थी। उसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सांप्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष भी किया लेकिन वह असफल रही। इसके कई कारण थे।

- कांग्रेस सांप्रदायिकता के स्वरूप को पूरी तरह नहीं समझ सकी जिसके कारण इससे लड़ने के लिए एक समग्र नीति तैयार करने में वह असफल रही। इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस दिभिन्न अस्थायी कार्यनीतियाँ अपनाती रही। साथ ही सांप्रदायिकता के तेजी से बदलते हुए स्वरूप के साथ कांग्रेस गति कायम नहीं रख सकी।
- राष्ट्रीय आंदोलन में कुछ हिन्दू पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ प्रवेश कर गयीं जिन्होंने कांग्रेस द्वारा मुसलमानों का विश्वास प्राप्त करने और उन्हें अपने साथ ले चलने के प्रयत्न में बाधा उत्पन्न की साथ ही कछ हिन्दू प्रतीकों (जैसे रामराज्य) के इस्तेमाल ने भी इसमें बाधा उत्पन्न की।
- सांप्रदायिक शक्तियों से निपटने में कांग्रेस ने क्रियान्वयन के स्तरों पर कभी-कभी गलत चुनाव किए। कांग्रेस ने सांप्रदायिक शक्तियों को रियायत देने का प्रयास किया और उनके साथ समझौता किया जिसके कारण सांप्रदायिक समूह को राजनैतिक प्रतिष्ठा मिलने लगी। कुछ अन्य अवसरों पर समझौते के मौके गँवा दिए गए और गत्यारोध की स्थिति पैदा हो गयी।

फिर भी इन सीमाओं को समस्या की जटिलता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए विशेषकर सरकार के सांप्रदायिकता के प्रति रवैये को देखते हुए इस समस्या को सुलझाना अत्यंत कठिन कार्य हो गया था। अंग्रेजी सरकार ने विभिन्न राजनैतिक दलों के बीच समझौता न होने देने के हर संभव प्रयास किए। कांग्रेस मुसलमानों को जो भी सुविधायें देने की कोशिश करती अंग्रेजी सरकार उससे अधिक रियायतें दे देती थी और कांग्रेस एक बार फिर मुसलमानों का समर्थन पाने में असफल रह जाती थी। अगले खंड में कांग्रेस के एकीकरण एवं समझौतों के प्रयासों और सरकार के विभाजन के प्रयासों पर विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

बोध प्रश्न 2

1 सांप्रदायिकता के प्रति अंग्रेजी नीति पर दस पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2 निम्नलिखित पर पाँच-पाँच पंक्तियाँ लिखें।

i) अन्तराल संकल्पना

....

....

....

....

....

ii) पुनरुत्थानवाद

....

....

....

....

....

3 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़े तथा सही ($\surd$) और गलत ($\times$) का निशान लगाएँ

i) अंग्रेजी सरकार ने सांप्रदायिकता की नींव डाली।
ii) पुनरुत्थानवाद के प्रसार ने द्विराष्ट्रीय नज़रिए को बढ़ावा दिया।
iii) कांग्रेस सांप्रदायिकता के तेजी से बदलते हुए स्वरूप के साथ गति न बनाए रख सकी।
iv) सांप्रदायिकता संगठनों ने जनसाधारण में सांप्रदायिकता का प्रसार किया।

22.4 बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिकता

इस खण्ड में हम सांप्रदायिकता की समस्या से जुड़े हुए बीसवीं शताब्दी में हुए कुछ मुख्य गतिविधियों पर दृष्टिपात करेंगे। हम उन पर संक्षिप्त चर्चा करके यह जानने का प्रयास करेंगे कि उन्होंने सांप्रदायिकता की समस्या को कैसे प्रभावित किया। पिछले भाग में अंग्रेजी नीति एवं कांग्रेस से संबंधित बिंदुओं पर चर्चा की गयी है आगे के भाग में इन बिंदुओं पर और प्रकाश डाला जाएगा।

22.4.1 बंगाल का विभाजन और मुस्लिम लीग का गठन

संभवतया बंगाल का विभाजन (1905) प्रशासनिक कदम के रूप में किया गया, लेकिन इसने जल्दी ही अंग्रेजी सरकार को एक अन्य राजनैतिक लाभ प्रदान किया, क्योंकि इसने बंगाल को हिन्दू बाहुल्य और मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में बाँट दिया। इस प्रकार यह बंगाल के राष्ट्रवाद को कमजोर बनाने और उसके विरुद्ध मुसलमानों को मजबूत करने की अंग्रेजों की इच्छा का परिणाम था। वाइसराय कर्जन के अनुसार "विभाजन पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को वह एकता प्रदान करेगा जो कि पुराने मुसलमान शासकों और राजाओं के शासन के काल के बाद उन्हें फिर से नहीं प्राप्त हो सकी थी।" विभाजन की योजना और स्वदेशी आंदोलन के साथ ही सरकारी संरक्षण मे 1906 के अन्त में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का गठन हुआ। इस दल में आगा खाँ, ढाका के नवाब और नवाब मुहसिन्नुल मुल्क जैसे बड़े जमींदार, भूतपूर्व नौकरशाह और उच्च वर्गीय मुसलमान शामिल थे। इसका उद्देश्य नौजवान मुसलमानों को कांग्रेस की ओर न जाने देने और फलतः राष्ट्रवादी मुख्यधारा में शामिल नहीं होने देना था।

मुस्लिम लीग का गठन पूर्ण रूप से सरकार के प्रति निष्ठा की भावना से प्रेरित था और इसका एक मात्र कारण समर्थन और संरक्षण के लिए सरकार का दामन पकड़ना था। इस उद्देश्य में उन्हें निराशा नहीं हुई।

इस काल का एक महत्वपूर्ण तथ्य मुस्लिम अलगाववाद का विकास था जिसके कारण थे—
- स्वदेशी आंदोलन के दौरान पुनरुत्थानवादी प्रवृतियों का फैलना।
- सरकार का यह प्रचार कि बंगाल के विभाजन से मुसलमानों को फायदा होगा।
- सांप्रदायिक दंगे भड़कना। स्वदेशी आंदोलन के दौर में पूर्वी बंगाल में कई सांप्रदायिक दंगे हुए, जिन्होंने अलगाववाद में योगदान किया।

22.4.2 पृथक निर्वाचन मंडल

1909 में विधान परिषदों के लिए निर्वाचन मोरले मिंटो सुधारों का एक महत्वपूर्ण अंग था। सांप्रदायिकता के इतिहास में यह महत्वपूर्ण कदम था। पृथक निर्वाचन मंडल का अर्थ चुनाव क्षेत्रों, मतदाताओं और निर्वाचित उम्मीदवारों को धर्म के आधार पर समूहों में बाँटना था। व्यावहारिक रूप से इसका अर्थ भिन्न मुस्लिम चुनाव क्षेत्र, मुस्लिम मतदाता और मुस्लिम उम्मीदवार की प्रथा आरंभ करना था। इसका अर्थ यह भी था कि गैर-मुस्लिम मतदाता मुस्लिम उम्मीदवारों के लिए मतदान नहीं कर सकते थे। इस प्रकार चुनाव प्रचार और राजनैतिकरण को धार्मिक दीवार के बीच सीमाबद्ध कर दिया। इन सभी घटनाओं के खतरनाक परिणाम अवश्यंभावी थे।

पृथक निर्वाचक मंडल की प्रक्रिया आरंभ करने के पीछे सोच यह थी कि भारतीय समाज भिन्न हितों और समूहों का जमघट है और यह बुनियादी रूप में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बँटा हुआ है। भारतीय मुसलमान एक भिन्न और मजबूत समुदाय के रूप में देखे गए। इसका उद्देश्य अपने संभावित सहयोगियों के हाथ मजबूत करना और हिन्दू-मुस्लिम एकता न होने देना था। संयुक्त निर्वाचक समूह के विरुद्ध तर्क देते हुए मिंटो ने मोरले को निम्न तर्क दिए।

"संयुक्त योजना के अंतर्गत न केवल हिन्दू अपने आदमी चुनने में सफल हो सकेंगे बल्कि ऐसे मुस्लिम उम्मीदवार भी चुन सकेंगे जो असली मुस्लिम हितों का प्रतिनिधित्व न करते हों।"

इस योजना के तहत मुसलमानों को आश्वासन दिया गया कि उन्हें कौंसिलों का प्रतिनिधित्व केवल उनकी संख्या के आधार पर ही नहीं बल्कि उनके "राजनैतिक महत्व" के आधार पर भी दिया जाएगा। इस प्रकार मिंटो ने एक मुस्लिम शिष्ट मण्डल को आश्वासन दिया कि :

> "जैसा कि मैं समझता हूँ कि आपकी माँग यह है कि प्रतिनिधित्व की किसी भी प्रणाली के अंतर्गत.........मुस्लिमों का एक समुदाय के रूप में प्रतिनिधित्व हो। आपकी यह माँग उचित है कि आपके समुदाय के राजनैतिक महत्व और साम्राज्य के लिए समुदाय द्वारा अर्पित की गयी सेवाओं को देखते हुए इस प्रकार विचार किया जाए। मैं पूरी तरह आपके समर्थन में हूँ। मैं आपसे केवल इतना कहूँगा कि मुस्लिम समुदाय को समुदाय के रूप में अपने अधिकारों और हितों की सुरक्षा के लिए मेरे प्रशासनिक क्षेत्र के किसी भी हिस्से में बिल्कुल निश्चिंत रहना चाहिए।

पृथक निर्वाचन मण्डल के प्रभाव निम्न रूप से श्रेणीबद्ध किए जा सकते हैं :
- इसने ऐसी संस्थागत संरचनाओं को जन्म दिया जिनसे अलगाववाद को बढ़ावा मिला।
- इससे कांग्रेस पर गंभीर दबाव आने वाला था तथा राष्ट्रवादी गतिविधियों के लिए इसके कारण क्षेत्र सीमित होने वाला था।
- इसके द्वारा सांप्रदायिक समूहों एवं सगंठनों की प्रक्रिया तेज होने वाली थी, तथा
- इसने भारतीय राजनैतिक दलों के बीच किसी भी समझौते की संभावना समाप्त कर दी।

पृथक निर्वाचक समूहों का प्रभाव भारतीय राजनैतिक माहौल में बाद के दिनों में प्रतिलक्षित हुआ था। डेविड पेज (प्रिल्यूड टु पार्टिशन, 1982) ने अपनी पुस्तक में बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से इसका वर्णन किया है।

> "भिन्न निर्वाचक समूह की प्रक्रिया आरंभ करने के पीछे संभवत: राज का यह प्रयास था कि अपनी नियंत्रण प्रणाली के महत्वपूर्ण हिस्से को मजबूत किया जाए। अपने परंपरागत सहयोगियों के आधार को विस्तृत बनाने के उद्देश्य के तहत ऐसा प्रयास किया गया था।"

22.4.3 लखनऊ समझौता

लखनऊ समझौता (1916) कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा एक समझौते पर पहुँचने का प्रयास था। मुस्लिम लीग का समर्थन प्राप्त करने के लिए एक अस्थायी प्रबन्ध के रूप में कांग्रेस ने पृथक निर्वाचन मंडल की माँग मान ली। लखनऊ समझौते से संबंधित दो बातें याद रखनी आवश्यक है :

- यह नेताओं के बीच का समझौता था न कि जनता के बीच का। कांग्रेस-लीग के समझौते को गलत रूप में हिन्दू-मुस्लिम समझौते का नाम दिया गया। इसके पीछे समझ यह थी कि लीग मुसलमानों की असली प्रतिनिधि है।
- गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1919, जिसने मुसलमानों को लखनऊ समझौते की अपेक्षा कही अधिक रियायतें दी, के कारण लखनऊ समझौता अर्थहीन हो गया।

22.4.4 ख़िलाफ़त

ख़िलाफ़त आंदोलन जिसके विषय में आपने पहले अध्ययन किया है एक ऐसे विशिष्ट राजनैतिक माहौल की उपज था जिसमें भारतीय राष्ट्रवाद और इस्लामी विश्व बंधुत्व साथ साथ कदम बढ़ा रहे थे। इसके साथ राष्ट्रवादी आंदोलन में मुसलमानों की सहभागिता में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई। चौरी-चौरा कांड के तुरंत बाद असहयोग आंदोलन के वापस लेने के साथ सांप्रदायिकता भारतीय राजनीति में प्रवेश करने लगी। 1922-27 के दौरान सांप्रदायिकता के उत्थान के कई लक्षण सामने आते हैं।

- सांप्रदायिक हिंसा अभूतपूर्व रूप से भड़की । केवल संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में 1923-27 के दौरान 91 सांप्रदायिक दंगे हुए। गो-हत्या और मस्जिदों के सामने संगीत के मुद्दे उभर कर सामने आए।
- हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतिनिधित्व करने वाली ख़िलाफ़त समितियाँ धीरे-धीरे लुप्त होने लगी।
- 1922-23 के दौरान मुस्लिम लीग को पुनः जीवित किया गया और इसने खुलेआम अलगाववादी राजनीति के पक्ष में बोलना आरंभ कर दिया।
- 1915 में गठित हिन्दू महासभा जो कि अभी तक अक्रियाशील थी उसे ऐसा माहौल मि पाया कि वह भी अपने को पुनर्जीवित कर सके।
- तबलीग (प्रचार) और तन्जीम (संगठन) जैसे आंदोलन मुसलमानों के बीच उठे जो कि हिन्दुओं के मध्य उठे शुद्धि और संगठन आन्दोलनों की प्रतिक्रिया स्वरूप थे। आंशिक रूप से ये (शुद्धि और संगठन) आंदोलन भी मापिला विद्रोह के दौरान हुए जबरन धर्म परिवर्तन की प्रतिक्रिया में हुए। इन तमाम घटनाओं ने राजनैतिक वातावरण को काफी प्रदूषित कर दिया।
- 1925 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना हुई।

इस बिगड़ती हुई सांप्रदायिक परिस्थिति के कई कारण थे।

- ख़िलाफ़त गठजोड़ ने धार्मिक नेताओं को राजनीति में खींच लिया लेकिन इन नेताओं ने राजनीति में प्रवेश अपनी शर्तों पर किया। आंदोलन वापिस लिए जाने के बाद भी राजनीति में इन धार्मिक नेताओं की सहभागिता समाप्त नहीं हुई। इसके कारण राजनीति की व्याख्या धार्मिक तौर पर आरंभ हो गई।
- राजनैतिक संरचना का स्वरूप अपने आप में पृथक निर्वाचन मंडल की प्रक्रिया आरंभ करने के साथ ही सांप्रदायिकता का बीज बन गया। इस संरचना का विस्तार 1919 में मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के आधार पर हुआ जिसमें सांप्रदायिक प्रचार और इसके आधार पर राजनैतिक गतिविधियों के पनपने का पथ प्रदर्शित किया गया।
- रोज़गार के अवसरों की भारी कमी के माहौल मे शिक्षा के विस्तार ने काफी बड़ी संख्या में शिक्षित बेरोज़गार पैदा कर दिये जो कि नौकरियों के लिए धर्म का इस्तेमाल करने के लिए तैयार थे।

1927 में राजनैतिक परिस्थिति काफी असंतोषजनक थी। राष्ट्रवादी शक्तियों में फूट पड़ गयी थी और वे बहुत सतही तौर पर कार्यरत थीं। सांप्रदायिकता इस दौरान काफी जोर पकड़ रही थी।

In Jail:—
Maulana Shaukat Ali, } Hon.
Seth Yakub Hasan, } Secretaries
Dr. Saifuddin Kitchlew,
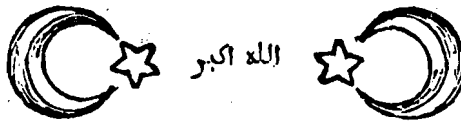
Telegraphic Address.
"KHILAFAT"

الجمعية المركزية الهندية الخلافة الاسلاميه (بمبئی)

The Central Khilafat Committee of India.

Dr. M. A. Ansari, President.
Dr. Saiyed Mahmud, } Hon.
Maulvi Moazzamali, } Secretaries.
Seth Osman Sobani,

Sultan Mansion,
Dongri, 3001
4

Bombay, ____________ 192

My Dear ~~Sir,~~ Panditjee

The Khilafat Working Committee held at Nagpur decided that two days before the special sessions of the Congress(middle of August) a committee of responsible persons be held to consider the future policy and line of action for the Khilafat organisation As this a very important matter I earnestly request you to kindly attend the committee meeting at Bombay to help us in our delibration and to enable us to decide our future line of action.

I remain
Yours sincerely
Syed Mahmud
Hony.Secretary

24 ख़िलाफ़त बैठक की सूचना

22.4.5 भिन्न रास्ते

साइमन कमीशन (1927) के आने और लगभग सभी राजनैतिक विचारों द्वारा सर्वसम्मति से इसका बहिष्कार किये जाने के कारण एक बार फिर एकता का अवसर आया। मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग का एक हिस्सा पृथक निर्वाचन मंडल के स्थान पर संयुक्त निर्वाचक मंडल के समर्थन में जाने को तैयार था लेकिन उसके लिए निम्न शर्तें थीं :

25 मोहम्मद अली जिन्ना

26 तेज बहादुर सप्रू

- केंद्रीय विधान मण्डल में मुसलमानों का एक तिहाई प्रतिनिधित्व हो
- सिंध को बंबई से अलग करके एक अलग प्रदेश बनाया जाए।
- उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेशों में सुधार लाए जायें, तथा
- पंजाब और बंगाल में उनकी जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार मुसलमानों को विधान परिषदों में प्रतिनिधित्व मिले।

कांग्रेस ने ये माँगे स्वीकार कर ली जिससे कि एकता की संभावना बढ़ी, लेकिन हिन्दू महासभा द्वारा आल पार्टीज कांफ्रेन्स में इसके बिना शर्त नामंजूर किये जाने के कारण समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। लीग और महासभा की प्रतिद्वंद्विता ने एकता के सभी प्रयास असफल कर दिये। नेहरू रिपोर्ट (जो कि मोतीलाल नेहरू तथा तेज बहादुर सप्रू द्वारा तैयार की गई थी) मुस्लिम लीग द्वारा नामंजूर कर दी गई क्योंकि इसमें उनकी सभी माँगे शामिल नहीं की गई थीं। नेहरू रिपोर्ट की नामंजूरी का प्रभाव काफी महत्वपूर्ण रहा।

इसके कारण जिन्ना, जिन्होंने कि इसे अलग-अलग रास्तों पर जाना (Parting of the ways) बताया, का कांग्रेस के साथ संबंध टूट गया। जिन्ना ने फिर से पृथक निर्वाचन मंडल का रास्ता अपनाया और अपने प्रसिद्ध चौदह सूत्री कार्यक्रम (पृथक निर्वाचन मंडल, केन्द्र और प्रदेशों में सीटों का आरक्षण, रोज़गार में मुसलमानों के लिए आरक्षण, नयी मुस्लिम बहुसंख्यक प्रदेश की स्थापना आदि भी इसमें शामिल थे) की घोषणा की जो कि सांप्रदायिक माँगों का दस्तावेज बन गया।

इसके कारण विभिन्न राजनैतिक दलों के बीच की दूरी बढ़ गई और जिन्ना सांप्रदायिकता के और निकट पहुँच गये।

इसके कारण सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रति अधिकतर मुसलमान नेताओं के बीच उदासीनता और कभी-कभी शत्रुता का भाव प्रतिलक्षित होने लगा।

22.4.6 जन आधार की ओर

1928-29 की घटनाओं ने सांप्रदायिक शक्तियों को चारों ओर फैला दिया। धीरे-धीरे सांप्रदायिकता ऐसी जन शक्ति के रूप में परिवर्तित होने लगी जिसका सामना कठिन प्रतीत होने लगी। 1940 में मुसलमानो के लिए एक अलग देश के रूप में पाकिस्तान के गठन की उठने वाली नयी माँग ने सभी अन्य सांप्रदायिक माँगों को अर्थहीन बना दिया। यह माँग अन्ततः 1947 में पूरी हुई। आइये इन घटनाओं को और विस्तार से देखा जाए। गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 ने प्रादेशिक स्वायत्तता एवं पहले के मुकाबले अधिक मताधिकार उपलब्ध कराए। पृथक निर्वाचक मंडल के तहत 1937 के आरंभ में चुनाव हुए। परिणाम काफी स्पष्ट थे। आम चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस ने चुनावों में भारी विजय पाई और छह प्रदेशों में मंत्रिमंडल गठित करने में सफल रही तथा अन्य दो प्रदेशों में अकेली सबसे बड़ी पार्टी सिद्ध हुई। लेकिन मुस्लिम चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस को निराशा हाथ लगी। 482 मुस्लिम चुनाव क्षेत्रों में से कांग्रेस ने 58 स्थानों पर चुनाव लड़ा और जिनमें से केवल 26 स्थानों पर उसे सफलता मिल पायी। इतना ही नहीं अपने को मुसलमानों की प्रतिनिधि कहलाने वाली पार्टी, मुस्लिम लीग की स्थिति भी काफी बुरी रही। उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों में उसे एक भी सीट नहीं मिली। पंजाब में 84 सीटों में से केवल 2 तथा सिंध में 33 में से उसे केवल 3 सीटें ही प्राप्त हो सकी। मुस्लिम लीग कहीं भी मंत्रिमंडल गठित न कर सकी। बंगाल और पंजाब जैसे महत्वपूर्ण प्रांतों में क्षेत्रीय पार्टियों (पंजाब में सिकंदर हयात खान के नेतृत्व वाली यूनियनिस्ट पार्टी तथा बंगाल में फजलुलहक के नेतृत्व वाली प्रजा-कृषक पार्टी) ने मंत्रिमंडल गठित किए।

चुनाव परिणाम कांग्रेस और मुस्लिम लीग के सामने अलग-अलग चुनौतियाँ लेकर आए। कांग्रेस के लिए चुनौती काफी स्पष्ट थी। हिन्दुओं के बीच कांग्रेस ने मजबूत आधार तैयार कर रखा था। लेकिन मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने में यह अभी भी कामयाब नहीं हो सकी थी। कांग्रेस के लिए इस संदर्भ में केवल एक ही आशा बची हुई थी कि मुसलमानों के बीच इसकी प्रतिद्वंद्वी पार्टी मुस्लिम लीग भी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं कर सकती थी। इस प्रकार कांग्रेस के समक्ष निम्न चुनौतियाँ थीं।

- मुसलमानों के बीच जनसाधारण के लिए कार्य किया जाए और उन्हें कांग्रेस के नजदीक

लाया जाय। 1937 में यह कार्य बहुत कठिन प्रतीत नहीं हो रहा था क्योंकि मुसलमान जनता इस समय किसी भी प्रभावशाली सांप्रदायिक अथवा राष्ट्रवादी राजनीति के प्रभाव से मुक्त नजर आ रही थी।

- मुस्लिम लीग को पूरी तरह नजर अंदाज करना क्योंकि इसका आधार मजबूत नहीं था। चुनावों के नतीजे से इसका गैर प्रतिनिधि चरित्र खुल कर सामने आ चुका था और ऐसी परिस्थिति में इसके साथ कोई समझौता करने का औचित्य नहीं था। इसीलिए नेहरू ने बड़े स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि देश के अंदर केवल दो ही शक्तियाँ हैं: राष्ट्रवादी शक्तियाँ, जिसका प्रतिनिधित्व कांग्रेस कर रही है, और साम्राज्यवादी शक्तियाँ, जिसका प्रतिनिधित्व सरकार कर रही है।

इस दोहरी चुनौतियों का मुकाबला करने के उद्देश्य से कांग्रेस ने "मुस्लिम जनसंपर्क अभियान" (Muslim Mass Contact Programme) शुरू करने का निर्णय लिया। यह प्रयास सभी संगठनों को नज़र अंदाज करते हुए प्रत्यक्ष रूप में मुसलमानों से कांग्रेस में शामिल होने की अपील करने के उद्देश्य से किया गया। कांग्रेस के इस कदम से जिन्ना काफी चिन्तित हो उठे और कांग्रेस को मुसलमानों से दूर रहने की चेतावनी दी क्योंकि उनके अनुसार केवल मुस्लिम लीग ही मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर सकती थी।

मुस्लिम लीग के लिए भी चुनौतियाँ स्पष्ट थी :

- अभी तक मुस्लिम लीग रईसों का संगठन बना हुआ था जिसका नेतृत्व राजे और जमींदार कर रहे थे तथा उसके पास कोई जन आधार नहीं था। चुनावी राजनीति में सफलता प्राप्त करने की प्रक्रिया में अपना पक्ष मजबूत रखने के लिए कांग्रेस जैसा जन आधार हासिल करना और लोकप्रिय संगठन बनाना अत्यावश्यक हो चुका था।
- 1937 तक सरकार ने जिन्ना के सभी चौदह सूत्रीय कार्यक्रम स्वीकार कर लिए थे फिर भी जिन्ना लक्ष्य से बहुत दूर थे। वे स्वयं अथवा लीग, जिसके वे स्थायी अध्यक्ष बन चुके थे, को राजनैतिक सम्मान दिला पाने की स्थिति में नहीं ले जा पाए। इसलिए आवश्यक था कि लीग की सदस्यता में वृद्धि की जाय और चूँकि अन्य सभी माँगें पृथक निर्वाचन मंडल, सीटों में आरक्षण आदि मान ली गयी थी अतः कुछ और भी बड़ी माँगे प्रस्तुत की जायें।

इस दोहरी चुनौती के लिए जिन्ना ने निम्नलिखित कार्य किए।

- मुस्लिम लीग को लोकप्रिय बनाने के लिए एक बड़ा अभियान आरंभ किया गया। मुस्लिम लीग अपने रईसी शिकंजे से बाहर आकर जन आधार प्राप्त करने लगी (यद्यपि यह जन आधार केवल मुसलमानों के बीच था) सदस्यता शुल्क घटा दिया गया, प्रांतीय कमेटियाँ गठित की गयीं और कार्यक्रम को सामाजिक-आर्थिक आधार देने के लिए उसमें परिवर्तन किए गए।
- कांग्रेस मंत्रिमण्डलों की भर्त्सना करने के उद्देश्य से उतना ही बड़ा अभियान शुरू किया गया। उन्हें हिन्दू राज का प्रतिनिधि और मुस्लिम अल्पसंख्यक विरोधी बताया गया। हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालने का यह सबसे अच्छा तरीका था। चूँकि जिन्ना इसे हिन्दुओं का संगठन बताते थे, इसलिए कांग्रेस को केवल हिन्दुओं की ओर ध्यान देने को कहा गया।
- 1940 के लाहौर सत्र में जिन्ना ने द्विराष्ट्रीय नजरिया प्रस्तुत किया। इसके अनुसार मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं बल्कि वे एक राष्ट्र (Nation) थे। चूँकि हिन्दू और मुसलमान आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप में भिन्न थे इसलिए वे दो अलग-अलग राष्ट्र थे। अतः भारतीय मुसलमानों के लिए एक अलग स्वायत्त देश होना चाहिए। इस प्रकार मुस्लिम देश के रूप में पाकिस्तान के गठन का प्रस्ताव सामने आया।

ऊपर जिन परिणामों की चर्चा की गई है उसके फलस्वरूप सांप्रदायिकता जन शक्ति के रूप में उभरने लगी। हालाँकि 1940 तक सांप्रदायिकता पूरी शक्ति प्राप्त कर नहीं पाई थी लेकिन एक जन शक्ति के रूप में इसके परिवर्तित होने की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। यही प्रक्रिया 1947 में पाकिस्तान को जन्म देने वाली थी।

बोध प्रश्न 3

1 पृथक निर्वाचक मंडल से आप क्या समझते हैं। लगभग 100 शब्दों में लिखें

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 निम्नलिखित पर पाँच-पाँच पंक्तियाँ लिखें

i) लखनऊ समझौता

....
....
....
....
....

ii) द्विराष्ट्रीय नजरिया (टू नेशन थियरी)

....
....
....
....
....

3 निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखें

i) हिन्दू महासभा का गठन कब हुआ?

....
....

ii) तबलीग और तनज़ीम आंदोलन के हिन्दू प्रतिपक्ष क्या थे?

....
....

iii) भिन्न रास्ते (Parting of the ways) का नारा किसने दिया?

....
....

4 चुनाव परिणामों ने कांग्रेस के समक्ष क्या चुनौतियाँ खड़ी कीं?

....
....

....

....

....

22.5 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि विभिन्न कारणों के परिणाम के रूप में सांप्रदायिकता भारत में किस प्रकार उभरी और पनपी। उन्नीसवीं शताब्दी के विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक विकास, औपनिवेशिक शासन की भूमिका, इसकी प्राथमिकताएँ और उन्हें पूरा करने के लिए इसके द्वारा उठाए गए कदम, सांप्रदायिकता विरोधी शक्तियों की कमजोरियाँ एवं सीमाएँ और बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिक शक्तियों का उत्थान इसके कारण हैं जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है। यद्यपि हमारी कहानी 1940 तक पहुँच कर समाप्त हो जाती है लेकिन सांप्रदायिकता की कहानी अभी समाप्त नहीं होती। सांप्रदायिकता का प्रवाद बढ़ता रहा। 1940 में पाकिस्तान की घोषणा से लेकर 1947 में उसके बनने तक के घटनाचक्र पर आगे की एक इकाई में चर्चा की जायेगी। लेकिन कुछ बाते यहाँ उल्लेखित की जा सकती हैं। पाकिस्तान का गठन सांप्रदायिक माँगों की चरम सीमा और सांप्रदायिकता का तार्किक परिणाम था। यह निम्नलिखित दोहरी प्रक्रिया का परिणाम था।

- राजनीति की राष्ट्रीय मुख्य धारा से मुसलमानों का एक समूह के रूप में धीरे-धीरे कट जाना और,
- मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान के रूप में सामने आने वाली सांप्रदायिक माँग के लिए एक सांप्रदायिक मंच पर मुसलमानों का एकत्र होना।

यह दोहरी प्रक्रिया इस लिए संभव हो सकी क्योंकि 1940 के दशक में सांप्रदायिकता एक जन शक्ति और विचारधारा के रूप में जनसाधारण को आकृष्ट करने लगी थी। यह वह प्रक्रिया थी जो 1920 के दशक में आरंभ हुई, 1930 के दशक में इसमें तेजी आयी और इसके उपरांत 1940 के दशक में इस प्रक्रिया का और अधिक विकास हुआ। अगली इकाई में आप सांप्रदायिकता के सबसे महत्वपूर्ण दौर का बाकी भाग पढ़ सकेंगे।

22.6 शब्दावली

स्थाई बन्दोबस्त : बंगाल में 1793 में अंग्रेजी सरकार द्वारा आरंभ की गयी नई भू-व्यवस्था, इसके अनुसार धनी किसानों से जो कि अधिकतर मुसलमान थे, संपत्ति का अधिकार छिन गया और वे काश्तकार बन गए।

नेहरू रिपोर्ट : साइमन कमीशन पर भारतीय प्रतिक्रिया। यह 1928 में तैयार किया गया संविधान था जिसे इसके तैयार करने वालों में से एक (मोतीलाल नेहरू) के नाम से जोड़ा गया। यह संविधान कई रूपों में 1950 में भारत में लागू किए गए संविधान का पूर्वरूप था। नेहरू रिपोर्ट 1930 में कांग्रेस ने यह कहकर त्याग दी कि वह सभी राजनैतिक दलों को स्वीकार्य नहीं थी।

गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 : मोरले मिंटो (1909) और मांतेग्यू चेम्सफोर्ड (1919) सुधारों के उपरांत अंग्रेजी सरकार द्वारा उठाया गया तीसरा संवैधानिक कदम। इसके अनुसार पृथक निर्वाचन मंडल के अंतर्गत चुनावों का प्रावधान और पहले से कहीं अधिक विस्तृत मताधिकार का प्रावधान लाया गया। इसी ऐक्ट के प्रावधान के अनुसार प्रांतीय स्वायत्तता लायी गयी जिसका अर्थ यह था कि विजयी पार्टी संबन्धित प्रान्त में सरकार बना सकती है। यद्यपि मुख्य अधिकार केंद्र में ही सुरक्षित थे।

22.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 देखें उपभाग 22.2.1

2 देखें उपभाग 22.2.2

3 i) (√) ii) (×) iii) (√) iv) (√)

बोध प्रश्न 2

1 देखें उपभाग 22.3.2

2 देखें उपभाग 22.3.1 और 22.3.3

3 i) (×) ii) (√) iii) (√) iv) (√)

बोध प्रश्न 3

1 देखें उपभाग 22.4.2

2 देखें उपभाग 22.4.3 और 22.4.6

3 i) 1915
   ii) शुद्धि एवं संगठन
   iii) मुहम्मद अली जिन्ना

4 देखें उपभाग 22.4.6

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

अयोध्या सिंह : *भारत का मुक्ति संग्राम*
ताराचन्द : *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास (भाग–2)*
प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली
रजनीपाम दत्त : *आज का भारत*
वी.एन. दत्त : *जलियाँ वाला बाग,*
हरियाणा हिंदी ग्रंथ अकादमी
शांतिमय राय : *स्वाधीनता आंदोलन में भारतीय मुसलमानों की भूमिका,*
पी.पी.एच., नई दिल्ली।
सोहन सिंह जोश : *अकाली मोर्चों का इतिहास*
पी.पी.एच. दिल्ली